International Journal of Sanskrit Research 2017; 3(2): 149-151

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2017; 3(2): 149-151
© 2017 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 26-01-2017
Accepted: 27-02-2017

डॉ० ब्रजेन्द्र कुमार
एसोशिएट प्रोफेसर
संस्कृत विभाग
के0 ए0 (पी जी) कॉलेज
कासगंज (उ0प्र0)

Correspondence
डॉ० ब्रजेन्द्र कुमार
एसोशिएट प्रोफेसर
संस्कृत विभाग
के0 ए0 (पी जी) कॉलेज
कासगंज (उ0 प्र0)

कालिदास के काव्य में रीति–सौन्दर्य

डॉ० ब्रजेन्द्र कुमार

प्रस्तावना

आचार्य 'वामन' ने 'विशिष्ट पदसंघटना' को 'रीति' नाम से अभिहित किया है। [1] सौन्दर्यबोध में इसका महत्व किसी से छिपा नहीं है। यह पूर्णतया गुणों पर अवलम्बित है। मानव शरीर में अवयवों का सुघटन जैसे सौन्दर्य का आधायक होता है वैसे ही काव्यशरीर में शब्दार्थ का सुगठन सौन्दर्य का कारक माना जाता है। यह काव्यात्मभूत 'रस' और 'भाव' आदि का उपकारक होता है। [2] आशय यह है कि नर–नारी की शारीरिक रचना से सौकुमार्य, माधुर्य, काठिन्य और रुक्षता आदि गुणों का जैसे ज्ञान होता है और उनसे तद्गत वैशिष्ट्य का बोध होता है। ठीक वैसे ही काव्यरचना की विशेषता माधुर्य आदि गुणों के द्वारा लक्षित होती है। भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में निम्नलिखित दस प्रकार के काव्यार्थगुणों का वर्णन किया है– 1. श्लेष 2. प्रसाद 3. समता 4. समाधि 5. माधुर्य 6. ओज 7. सुकुमारता 8. अर्थ–व्यक्ति 9. औदार्य 10. कान्ति। आचार्य दण्डी को भी ये पूर्णतः स्वीकार्य हैं किन्तु आचार्य वामन इनको शब्द और अर्थगत द्विविध मानते हुये इनके 10–10 भेद स्वीकार करते हैं। भोज के अनुसार इनकी संख्या 24 और आचार्य आनन्दवर्धन और मम्मट के अनुसार इनकी संख्या 'ओज', 'प्रसाद' और 'माधुर्य' के रूप में मात्र तीन है। इन्हीं के आधार पर–

आचार्य वामन ने 'वैदर्भी' 'पांचाली' और 'गौडी' इन तीन रीतियों का वर्णन किया है। यतः रीतियाँ पूर्णतया गुणाश्रित हैं। अतः सर्वप्रथम गुणगत सौन्दर्य को देखना ही उपयुक्त है। काव्यगत गुण चित्तवृत्ति के पर्य्याय माने जाते हैं। विभिन्न रसों की चर्वणा में सहृदय सामाजिक के चित्त की निम्नवत् विभिन्न दशायें होती हैं– द्रुति, दीप्ति और व्याप्ति। चित्त की आर्द अवस्था को 'द्रुति' तथा अत्यन्त उज्ज्वलता अथवा विस्तृति का नाम 'दीप्ति' और व्यापकता अथवा विकास का नाम 'व्याप्ति' है। चित्त के इसी द्रवीभाव रूप का आह्लाद का नाम 'माधुर्यगुण' है। चित्त की विस्ताररूप दीप्ति का नाम 'ओजोगुण' है एवं चित्त के त्वरित व्यापकत्व को 'प्रसादगुण' कहा जाता है।

माधुर्यगुण

चित्त का द्रुतिरूप आह्लाद जिसमें अन्तःकरण द्रवित हो जाये, ऐसी विशिष्ट आनन्दानुभूति को माधुर्य कहा जाता है। यह गुण संभोग–श्रृंगार, करूण, विप्रलम्भ और शान्त रसों क्रमशः प्रवृद्ध रहता है। इसके व्यंजक वर्ण (ट, ठ, ड, ढ को छोड़कर सभी स्पर्श वर्ण) अपने वर्ग के अन्तिम वर्ण के साथ इस प्रकार संयुक्त रहते हैं कि पंचम वर्ण पहले आता है और स्पर्श वर्ण पीछे। साथ ही रेफ और लकार ह्रस्व स्वर से युक्त रहते हैं। इसमें समास का पूर्णतः अभाव रहता है या फिर अल्पसमास का प्रयोग होने के कारण रचना अत्यन्त मधुर हो जाती है। कालिदास की रचनाओं में माधुर्यव्यंजक वर्णों के कोमल प्रयोग, दीर्घ समासों का अभाव तथा अन्तःकरण को द्रवित करने वाली ह्लादमयी पदरचना सर्वदा लक्षित होती है। उदाहरण के रूप में 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' का यह श्लोक जिसमें शकुन्तला की भ्रमरबाधा का वर्णन करते हुये वे लिखते हैं–

चलापांगां दृष्टिं स्पृशसि बहुशो वेपथुमतीं,
रहस्याख्यायीव स्वनसि मृदु कर्णान्तिकचरः।
करौ व्याधुन्वत्याः पिबसि रतिसर्वस्वमधरं,
वयं तत्वान्वेषान्मधुकर हतास्त्वं खलु कृती।।

यह श्लोक संयोग–श्रृगार का उदाहरण है। इसमें ट, ठ, ड, ढ को छोड़कर सभी स्पर्श वर्णों का इस प्रकार का विनिवेश किया गया है कि पंचम वर्ण प्रथम और स्पर्श वर्ण पश्चात् प्रयुक्त हुये हैं। कोमल वर्णों से युक्त यह रचना माधुर्यगुण की सूचक है। [3] इसमें निश्चय ही पाठक को चित्तद्रुतिरूप आह्लाद प्राप्त होता है।

ओजोगुण

जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि चित्त का विस्तारस्वरूप दीप्तित्व 'ओजः' कहा जाता है। यह गुण वीर, बीभत्स तथा रौद्र रसों में क्रमशः आधिक्य के साथ पाया जाता है। इसमें लम्बे समासयुक्त पद जिसमें ओजगुण व्यंजकवर्ण वर्गों के प्रथमाक्षर के साथ सम्पृक्त हुआ उसी वर्ग का द्वितीयाक्षर तथा तृत्तीय के साथ उसी वर्ग का चतुर्थाक्षर प्रयुक्त होता है यथा– क्स, त्थ, द्ध, च्छ और ज्स आदि। इसके अतिरिक्त आगे या पीछे रेफयुक्त वर्ण जैसे– र्क, क्र आदि तथा ट, ठ, ड, ढ, श, ष ये सभी ओजस् गुणाभिव्यंजक वर्ण रचना में विद्यमान रहते हैं। [4] यद्यपि कालिदास 'वैदर्भी रीति' तथा 'प्रसादगुण' के लिए प्रसिद्ध हैं, कठोर ध्वनियाँ, कर्कश संयुक्ताक्षर एवं समासबहुल पदावली उनकी रचनाओं में विरल हैं, तथापि वीर, बीभत्स तथा रौद्र रसों के प्रयोग में एतज्जन्य ओजः गुण कम दर्शनीय नहीं है, तद्यथा–

तपः परामर्श विवृद्धमन्योर्भ्रुभंगदुष्प्रेक्ष्यमुखस्य तस्य।
स्फुरन्नुदर्चिः सहसा तृतीयादक्ष्णां कृशानुः किल निष्पपात।। [5]

प्रसादगुण

कालिदास का अपना प्रियगुण प्रसाद है यह अपनी वैदर्भी शैली के अनुसार बड़ी प्रांजलता से उनके काव्य में समुल्लसित है। प्रसादगुणसम्पन्न रचना सामाजिकों के हृदय में उसी प्रकार सद्यः व्याप्त हो जाती है जिस प्रकार कि शुष्क ईधन में अग्नि। [6] यह एक ऐसा गुण है जो सभी रसों और सभी प्रकार की रचनाओं में रह सकता है। इन्दुमती के निधन के बाद अजविलाप कालिदास की प्रसाद गुणमयी रचनाओं में अन्यतम है। वे लिखते हैं कि–

सदुःखसुखः सखीजनः प्रतिपच्चन्द्रनिभोऽयमात्मजः।
अहमेकरसस्तथापि ते व्यवसायः प्रतिपत्तिनिष्ठुरः।। [7]

अज के वियोग के आशु बोधगम्यता के कारण यहाँ स्पष्ट ही प्रसादगुण है। आचार्य कुन्तक ने रीतियों के स्थान पर तीन प्रकार के मार्ग निरूपित किए हैं– 1. सुकुमार मार्ग, 2. विचित्र मार्ग, 3. मध्यम मार्ग। इन मार्गों में चार विशेष गुणों की स्थिति उन्होंने मानी है– माधुर्य, प्रसाद, लावण्य और अभिजात्य। इसके साथ ही 'औचित्य' और 'सौभाग्य' ये दो सामान्यगुण भी माने हैं। औचित्य और सौभाग्यगुण को कालिदासीय काव्य में सम्यक् प्रकार से पोषित किया गया है अधोवर्णित उदाहरणों में उनका निर्देशन किया जा सकता है।

शरीरमात्रेण नरेन्द्र, तिष्ठन्नाभासि तीर्थप्रतिपादितर्द्धिः।
आरण्यकोपात्तफलप्रसूतिः स्तम्बेन नीवार इवावशिष्टः।। [8]

सौभाग्य का उदाहरण भी कम दर्शनीय नहीं है–

दीर्घाक्षं शरदिन्दुकान्तिवदनं बाहूनतावंसयोः,
संक्षिप्तं निबिडोन्नतस्तनमुरः पार्श्व प्रमृष्टे इव।
मध्यः पाणिमितो नितम्बि जघनं पादावरालांगुली,
छन्दो नर्तयितुर्यथैव मनसि श्लिष्टं तथास्या वपुः।। [9]

औचित्यगुण सहज, ऋजु एवं स्पष्ट मार्ग का द्योतक होता है, किन्तु सौभाग्यगुण के लिए कवि को प्रयत्न करना पड़ता है। कालिदास के काव्य में ये दोनों ही प्रतिफलित हैं। अस्तु, उपर्युक्त गुणों के आधार पर तीन रीतियाँ स्वीकृत हैं जो कालिदास के काव्य में निम्नवत् व्यवहृत हैं– 1. वैदर्भी रीति, 2. गौडी रीति, 3. पांचाली रीति। हम यहाँ सभी पर संक्षिप्त प्रकाश डाल रहे हैं।

वैदर्भी रीति

काव्यशास्त्र में यह रीति सर्वोत्कृष्ट मानी गयी है। यह सभी प्रकार के काव्यदोषों से रहित, विरल समासयुक्त, अप्रयत्नसाध्य, सालंकार, माधुर्य गुणाभिव्यंजक व्यंजनों से संयुक्त होने के साथ–साथ श्रृंगार, करूण आदि सुकुमार रसों से गुम्फित होती है। आचार्य मम्मट ने इसे 'उपनागरिका' नाम दिया है। कालिदास को यह रीति सातिशय प्रिय है क्योंकि उन्होंने अपने काव्य में इसका सर्वाधिक प्रयोग किया है। यहाँ उदाहरणार्थ 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' के द्वितीयांक का एक श्लोक प्रस्तुत किया जा सकता है–

गाहन्तां महिषा निपानसलिलं श्रृंगैर्मुहुस्ताडितं
छायाबद्ध कदम्बकं मृगकुलं रोमन्थमभ्यस्त तु।
विश्रब्धं क्रियतां वराहततिमिमुस्ताक्षतिः पल्वले,
विश्रामं लभतामिदं च शिथिलज्याबन्धमस्मद् धनुः।। [10]

इस पद्य में आचार्य वामन ने समस्त गुणों से युक्त वैदर्भी रीति को स्वीकार किया है। उनके अनुसार इस पद्य में ओजः, प्रसाद, माधुर्य, सौकुमार्य आदि दश गुणों से युक्त समग्र गुणापेता वैदर्भी रीति है। यह तो स्थालीपुलाकन्याय से निदर्शनमात्र है। कालिदास का सम्पूर्ण साहित्य ही इसका उदाहरण है।

गौडी रीति

आचार्य वामन ने गौडी रीति का विवेचन करते हुये लिखा है कि जिसमें 'ओजः' और 'कान्ति' नामक दो ही गुण विद्यमान हों, उसे गौडी रीति कहते हैं। इसमें माधुर्य एवं सुकुमार गुणों का अभाव रहता है। परिणामतः यह रीति समासबहुला और अत्यन्त उग्र पदों वाली होती है। रौद्र एवं वीर आदि कठोर रसों की उपकारक होती है। मम्मट ने इसे 'परुषा–वृत्ति' नाम दिया है।

कालिदास की स्निग्ध–शालीन चेतना ओजःपूर्ण प्रसंगों के उपनिबन्धन में अज्ञातभाव से बाधक सिद्ध हुयी है। इसलिए गौडी रीति का दीप्तिकारक सौन्दर्य उनके काव्य में दृष्टिगोचर नहीं होता है। पुनरपि निम्नलिखित पद्य द्रष्टव्य हैं–

संग्रामं प्रलयाय सन्निपततो वेलामतिक्रामतो,
वृन्दारासुरसैन्यसागरयुगस्याशेषदिग्व्यापिनः।
कालातिथ्यभुजो बभूव बहलः कोलाहलः क्रोषणः,
शैलोत्तालतटीविघट्टनपटुर्ब्रह्माण्डकुक्षिम्भरिः।। [11]

कहना न होगा कि इनके काव्य में वीररस का वह प्रवाह प्रस्फुट नहीं हुआ है जो बन्ध की उल्वणता तथा गाढ़ता से अनायास उद्रिक्त हो जाता है। कालिदास की रससिक्त चेतना युद्धभूमि को भी 'चषक' और 'मधुकुल्या' से युक्त आपानभूमि के रूप में ही देखती है। [12] भीषण युद्ध के दुर्धर्ष क्षणों के मध्य भी उनकी दृष्टि 'पिशितप्रिया' श्रृगाली की ओर चली जाती है जो बाहु में बँधे विजायट से तालु के कट जाने के कारण उस नोची गयी बाँह के टुकड़े को छोड़ देती है। [13] एक दूसरे को परस्पर मारकर देवलोक पहुँचे हुये दो वीरों के मध्य वहाँ भी एक ही देवांगना को हस्तगत करने हेतु हुये विवाद में कवि की दृष्टि उलझती है। [14] तारकासुर द्वारा प्रयुक्त आग्नेयास्त्र का सर्वतोव्यापि धूम्र भी नीलकमलों के झुण्ड के समान ही स्निग्ध लगता है। [15] क्रुद्ध योद्धाओं के रोषभरे नेत्र खिलते हुये लाल कमल के समान 'विकचकोकनददारुणाक्षः' [16] योद्धाओं के शरीर से प्रवाहमान रुधिर बालसूर्य के समान 'बालारुणोऽभूद्रुधिरप्रवाहः' [17] कविचेतना को अधिक आकृष्ट करता है।

पांचाली रीति

यह रीति गाढबन्ध से रहित, शिथिल पद से युक्त, माधुर्य, सौकुमार्य आदि गुणों से समन्वित एवं सम्पूर्ण सौन्दर्य से शोभित मानी गयी है। [18] महाकवि कालिदासकृत रघुवंशमहाकाव्य के वसन्तवर्णन में यही रीति परिलक्षित होती है।

श्रुतिसुखभ्रमरस्वनगीतयः,
कुसुमकोमलदत्तरुचो बभुः।
उपवनान्तलतापवनाहतैः,
किसलयैः सलयैरिव पाणिभिः।। [19]

उपर्युक्त विवेचन का सारांश यह है कि कालिदास के काव्य में सामान्यतः सभी रीतियों का सौन्दर्य समन्वित हुआ है तथापि उनके समस्त काव्यग्रन्थ मुख्यतः वैदर्भी रीति में उपनिबद्ध हुये हैं। 'विपंचीस्वरसौभाग्या' यही शैली उनकी काव्यसरस्वती का आभूषण हे। इस प्रकार कालिदास का सम्पूर्ण साहित्य रीतिगत–सौन्दर्य से भरा हुआ है यह निश्चप्रच है।

सन्दर्भ

1. काव्यालंकारसूत्रवृत्तिः, 1–2–7, 8।
2. पदसंघटनारीतिरंगसंस्था विशेषवन्।
   उपकर्त्री रसादीनाम्।। साहित्यदर्पणम्, 9–1।
3. चित्तद्रवीभावमयाह्लादो माधुर्यमुच्यते।
   संयोगे करूणे विप्रलम्भे शान्तेऽधिकं क्रमात्।। सा0द0, 2–3।
4. ओजश्चित्तस्य विस्ताररूपं दीप्तत्वमुच्यते।
   वीरबीभत्सरौद्रेषु क्रमेणाधिक्यमस्य तु।। सा0द0, 8–4, 5।
5. द्र0 – कुमारसम्भवम्। 3–7।
6. शुष्केन्धनाग्निवत् स्वच्जज्वलवत् साहसेव्यः।
   व्याप्नोत्यन्यत् प्रसादोऽसौ सर्वत्र विहितस्थितिः।। काव्यप्रकाश, 93।
7. रघुवंशमहाकाव्यम्। 8–65।
8. अभिज्ञानशाकुन्तलम्। 5–6।
9. मालविकाग्निमित्रम्, 2–3।
10. द्र0 – रघुवंशमहाकाव्यम्। 7–49।
11. कुमारसम्भवम्। 15–53।
12. रघुवंशमहाकाव्यम्। 7–49।
13. रघुवंशमहाकाव्यम्। 7–50।
14. द्र0 – वही। 7–53।
15. द्र0 – वही। 17–16।
16. कुमारसम्भवम्। 16–35।
17. रघुवंशमहाकाव्यम्। 7–42।
18. काव्यालंकारसूत्रवृत्तिः। 1–2–14।
19. रघुवंशमहाकाव्यम्। 9–95।